विचार और संस्कृति का मासिक

समयांतर

ISSN 2249 - 0469

असहमति का साहस और सहमति का विवेक

जून, 2023 www.samayantar.com वर्ष : 55, अंक : 6 मूल्य : 30 रुपए

महत्वाकांक्षाओं का फंदा

संपादकीय

कर्नाटक : बदलाव की नासमझ कवायद

रामशरण जोशी

राष्ट्रवादियों के समय में औरतें

सीमा आजाद

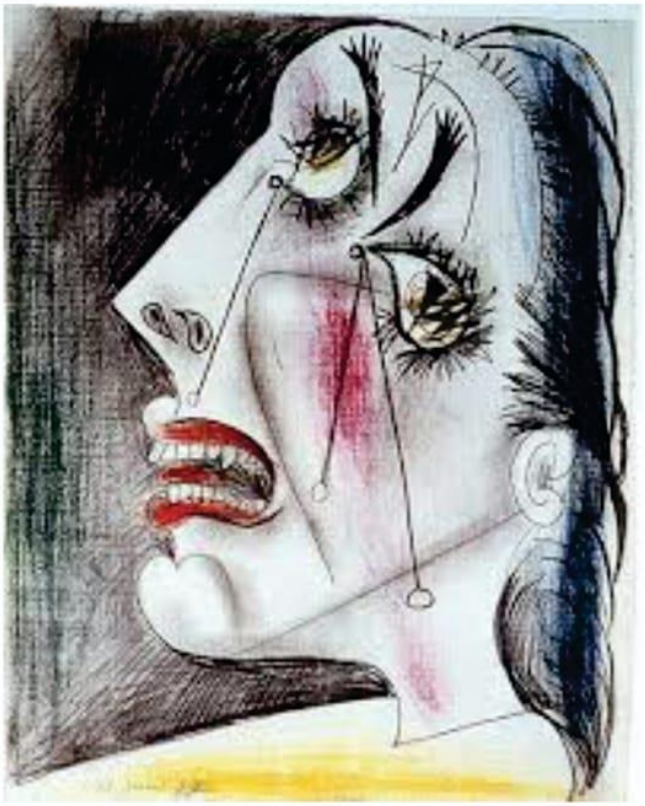

इस अंक में

'संगोल' का यथार्थ
- सी.एन. अन्नादुराई

हमारी परिवित दुनिया की तबाही
- संजय कुमार

...जो डूबा सो पार
- चंद्रकला

बदहाल रोहिंग्या शरणार्थी और कूटनीतिक चालें
- यूसुफ किरमानी

गोरखाओं में चीन की बढ़ती दिलचस्पी
- प्रेम पुनेठा

गिरवी रखी कूंची
- रुचिर जोशी

समीक्षाएं

किनारे-किनारे दरिया
- गगनदीप

'दहाड़' से आहत 'कटहल' से राहत
- धीरेश सैनी

न कि मानव श्रम। जबकि शहर का आस्तित्व मानव श्रम के बिना नहीं हो सकता है। मानव श्रम के बने रहने के लिए सामाजिक पुनरूत्पादन की व्यवस्था का होना अनिवार्य है लेकिन शहरी अर्थव्यवस्था ने परंपरागत पुनरूत्पादन की व्यवस्था को तो बदल दिया है। गरीब महिलाओं को अनौपचारिक श्रम में ढकेल दिया है लेकिन इस बदलाव की प्रक्रिया में शामिल न तो श्रम और न ही श्रमिक की पहचान की जा रही है जिससे उनका जीवन भी सुरक्षित नहीं है। मालिक और घरेलू कामगार के बीच मौजूद सत्ता संबंधों को तब तक चुनौती नहीं दी जा सकती है जब तक कानूनी प्रावधान न हों और तब तक घरेलू कामगार की जिंदगी मलिकों के दया पर ही निर्भर रहेगी। ■

संदर्भग्रंथ

-डेविड हार्वे (1985) *कांसेसनेस एंड अर्बन एक्स्पीरियंस: स्टडी इन द हिस्ट्री एंड थ्योरी ऑफ कैपिटलिस्ट अर्बनाइजेशन* 1, बेसिल ब्लैक्बेल यूनाइटेड किंगडम.

-एच मेलोच एंड लोगन जे आर. (1987?), *अर्बन फॉर्च्यूंस : द पोलिटिकल एकॉनॉमी ऑफ स्पेस,* यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस.

-जयश्री बजोरिया (2021), 'मी टू: इंडियाज डोमेस्टिक वर्क्स आर सेंडिंग स्मृति ईरानी पोस्टकार्डस डिमांडिंग सेफ वर्कप्लेस', स्क्रोल.इन https://scroll.in/article/~}y}|y/metoo-inâýias-âýomestic-workers-are-senâýing-smriti-irani-postcarâýs-âýemanâýing-safe-workplaces

-*टाइम्स ऑफ इंडिया,* नोयडा हाई-राइज रेसिडेंट ड्रैगस हाउस हेल्प आउट ऑफ एलेवेटर, बीट्स हर अप, https://timesofinâýia.inâýiatimes.com/city/noiâýa/woman-beats-up-house-help-in-noiâýa-society/articleshow/96550150.cms

-शुमा राहा (2023), गुरुग्राम केस एंड राइज ऑफ अर्बन क्लास वायलेंस : आर इंडियाज डोमेस्टिक वर्क्स सेफ? https://www.thequint.com/opinion/gurgaon-case-rise-of-urban-class-violence-are-inâýias-âýomestic-workers-safe

उत्तराखंड में विकास /शोध-2

राजनीति और पर्यावरणीय चुनौतियां

लता जोशी

बीते कुछ वर्षों के अनुभवों और कई वैज्ञानिक शोधों ने संकेत दिए हैं कि नव गठित राज्य के लिए जिन योजनाओं को अपनाया गया वे पहाड़ी भूगोल के अनुरूप नहीं रही हैं।

पृथक उत्तराखंड राज्य को लेकर जो बुनियादी मांग थी वह एक ऐसा अलग राज्य बनाने की थी जो अपने विशिष्ट पहाड़ी भूगोल की जरूरतों के मुताबिक अपने विकास का पर्यावरण सम्मत एक नया मॉडल चुन सके। राज्य निर्माण के बाद राज्य का नेतृत्व जिन हाथों में आया उन्होंने बुनियादी तौर पर यहां विकास के लिए दो संभावनाओं पर सबसे अधिक दांव लगाया। इसके तहत उत्तराखंड को 'ऊर्जा प्रदेश' और 'पर्यटन प्रदेश' बनाने के 'विजन' सामने रखे गए। 'ऊर्जा प्रदेश' की प्रेरणा, उत्तराखंड की 16 प्रमुख नदियों और उनकी असंख्य सह-धाराओं से निकली थी जहां 'हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट्स' के निर्माण से विद्युत ऊर्जा के उद्योग को विकसित करने का था। इस 'विजन' पर काम करते हुए यहां की नदियों में सैकड़ों बांध परियोजनाएं प्रस्तावित की गईं जिनमें से कई परियोजनाएं तैयार की जा चुकी हैं और कई निर्माणाधीन हैं। वहीं दूसरी ओर 'पर्यटन प्रदेश' का 'विजन', पर्वतीय राज्य की अपार खूबसूरती और धार्मिक महत्व के चलते यहां पर्यटन उद्योग का विकास करना था। इसके लिए बीते दौर में प्रदेश भर में धार्मिक पर्यटकों के लिए 'चार धाम यात्रा' और अन्य धार्मिक स्थलों की यात्रा को प्रोत्साहित करने के प्रयास किए गए और नैसर्गिक खूबसूरती से भरपूर जगहों को भी पर्यटक स्थल बनाने की कोशिशें की गईं। इसी सिलसिले में राज्य भर में सड़कों का जाल बिछाया गया और सड़कों के चौड़ीकरण की कई परियोजनाएं सामने आईं, जिनमें से आठ सौ किमी से अधिक की 'ऑल वैदर रोड' एक महत्वाकांक्षी योजना थी।

लेकिन बीते कुछ वर्षों के अनुभवों और कई वैज्ञानिक शोधों ने संकेत दिए हैं कि नव गठित राज्य के लिए जिन योजनाओं को अपनाया गया वे पहाड़ी भूगोल के अनुरूप नहीं रही हैं। हिमालय के एक अति संवेदनशील भूगोल वाले राज्य की अपनी संवेदनशील बनावट और वैश्विक स्तर पर पर्यावरण में परिवर्तन के खतरों के चलते हाल के वर्षों में राज्य भर में पर्यावरण से संबंधित कई चुनौतियां उभर कर सामने आई है।

जनवरी 2023, के शुरुआती हफ्ते में उत्तराखंड के जोशीमठ कस्बे से आई खबरों ने सभी का ध्यान अपनी ओर खींचा। धीमे धीमे कई महीनों से धंस रहे कस्बे के एक बड़े हिस्से में लोगों ने गहरा भू-धंसाव महसूस किया था। जो दरारें बीते कई महीनों से कस्बे के कई घरों, इमारतों, रास्तों और सड़कों में अलग अलग स्तर पर देखी जा रही थी, 2 जनवरी के दिन अचानक और फैल गईं और एक बड़े इलाके में इसका असर महसूस किया जाने लगा। 23 जनवरी 2023 तक जोशीमठ के घरों-मुहल्लों में लगातार बढ़ती जा रही दरारों ने कस्बे के सारे ही नौ वार्डों के कम से कम 863 घरों को अपनी चपेट में ले लिया था।

भूगर्भीय तौर पर यह घटना इसलिए हुई थी क्योंकि जोशीमठ कस्बे के बीचों बीच पिछले तकरीबन सात महीने से बढ़ रहे सब्सीडेंस जोन/भूधंसाव क्षेत्र में अचानक से कुछ ही दिनों में-5 सेंटीमीटर का धंसाव आ गया था। नैशनल रिमोट सेंसिंग सेंटर यानी (एनआरएससी) NRSC और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन यानी ISRO ने सेटेलाइट-आधारित डाटा के अध्ययन के यह तथ्य बताया था। इस प्रारंभिक रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया था कि-5 सेंटीमीटर का यह भूधंसाव संभवत: 2 जनवरी को ही हुआ हो। इसे स्थानीय लोगों ने भी महसूस किया था।

NRSC और ISRO की शुरुआती अध्ययन रिपोर्ट में यह भी बताया गया था कि अप्रैल से लेकर नवंबर 2022 तक के 7 महीनों में धीमे-धीमे जोशीमठ में-9cm का भू-धंसाव हुआ था। जिसे स्थानीय लोगों ने महसूस भी किया था क्योंकि उनके घरों में इसके चलते बड़ी बड़ी दरारें आ गईं थी। इस पर कई मीडिया रिपोर्ट्स भी हुई थी लेकिन उन्हें वैसा महत्व नहीं मिला जैसा कि 2 जनवरी के बाद अचानक से बढ़ी दरारों के चलते मीडिया के जरिए मिला था।

जोशीमठ की इस घटना के बाद से जिस चर्चा ने राष्ट्रीय स्तर पर फिर से आकार लिया है उसका संबंध विकास के मॉडल से है। तकरीबन आधा दशक पहले जोशीमठ कस्बे की संवेदनशीलता को लेकर बेहद महत्वपूर्ण तथ्यों का जिक्र किया गया था और यहां सस्टेनेबल डेवलेपमेंट (सतत/स्थाइत्वपूर्ण विकास) के लिए बेहद जरूरी सुझाव दिए गए थे।

1960-70 के दशक में भी जोशीमठ में इसी तरह का एक भूधंसाव नोटिस किया गया था। जिसके बाद उस समय की उत्तर प्रदेश सरकार ने गढ़वाल के तत्कालीन कमिश्नर एमसी मिश्रा की अध्यक्षता में एक 17 सदस्यीय कमेटी गठित की थी। 1976 में जारी हुई इस कमेटी की रिपोर्ट में विस्तार से जोशीमठ की संवेदनशील भौगोलिक और भूगर्भीय स्थिति की व्याख्या की गई थी। इस रिपोर्ट में कहा गया था, ''जोशीमठ बालू और पत्थरों का ढेर है, यह मुख्य चट्टान नहीं है। इसलिए यह किसी कस्बे की बसासत के लिए उपयुक्त जगह नहीं थी। विस्फोटों के इस्तेमाल और भारी यातायात से पैदा होने वाली कंपन भी प्राकृतिक कारकों में असंतुलन पैदा कर देगी।'' पर रपोर्ट के सभी सुझावों को दरकिनार कर दिया गया।

'विकास' और उत्तराखंड

लंबे समय तक विकास का अर्थ व्यापक तौर पर इंफ्रास्ट्रक्चर के उत्तरोत्तर निर्माण, पूंजी के तेज प्रसार, उसके निर्माण और उससे आई/आ रही आर्थिक समृद्धि के तौर पर लिया जाता रहा है। लेकिन बाद के दौर में विकास की इस एकरूप समझ को कई विद्वानों ने चुनौती देते हुए 'विकास' की एक समग्र समझ पर जोर डाला है।

इस नई समझ के अनुरूप विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें भौतिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, सामाजिक व जनसांख्यिकी घटक जुड़े होते हैं और जो प्रगति व सकारात्मक परिवर्तन दर्शाता हो। विकास का उद्देश्य जनसंख्या के जीवन के स्तर और गुणवत्ता में वृद्धि करना और पर्यावरण के संसाधनों को नुकसान पहुंचाए बिना स्थानीय क्षेत्रीय आय और रोजगार के अवसरों का निर्माण या विस्तार करना है।

इसी क्रम में 1983 में संयुक्त राष्ट्र की ओर से नॉर्वे की तत्कालीन प्रधानमंत्री ग्रो हरलैम ब्रूंटलैंड की अध्यक्षता में वर्ल्ड कमिशन ऑन एन्वायर्न्मेंट एंड डेवेलपमेंट को गठित किया गया था। कमिशन ने 1987 में 'अवर कॉमन फ्यूचर' नाम से एक महत्वपूर्ण डॉक्यूमेंट पेश किया जिसे हम ब्रूंटलैंड रिपोर्ट के नाम से भी जानते हैं। इस दस्तावेज में 'विकास' को इसके प्रचलित अर्थों से आगे चल कर देखे जाने का आग्रह था।

इस दस्तावेज में विकास की व्याख्या करते हुए कहा गया था, ''ऐसा विकास जो कि भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा कर पाने की क्षमताओं को खतरे में डाले बगैर वर्तमान की जरूरतों को पूरा कर दे।''

इसी क्रम में 80 के दशक में अमर्त्य सेन ने विकास के असल लक्ष्य को एक नई तरह से परिभाषित किया जिसे 'क्षमता दृष्टिकोण' कहा जाता है। इस नजरिए के मुताबिक मानव विकास का मूल लक्ष्य, जीडीपी में वृद्धि, तकनीकी प्रगति या औद्योगिकीकरण को बेतरह बढ़ाते जाने के बजाय इस तरह का जीवन जी सकने की क्षमता पैदा करना हो जिससे वास्तव में मानवीय गरिमा का सम्मान हो सके।

एक संघीय गणराज्य के तौर पर भारत इस बात तो लेकर शुरुआत से ही उलझा रहा है कि यहां राज्यों के पुनर्गठन का तर्कसंगत आधार क्या हो। यह प्रश्न इस महादेश के आकार, उसके इतिहास और संस्कृति की जादूई विविधता के कारण वाकई हमेशा एक जटिल प्रश्न रहा है। भारत की आजादी के बाद 1950 में ब्रिटिश हुकूमत के दौर के 'यूनाइटेड प्रोविंसेज ऑफ आगरा एंड अवध' को उत्तर प्रदेश नाम मिला था। इस भूगोल का बहुतायत हिस्सा आम तौर पर गंगा-यमुना के दोआब में पसरा सघन आबादी वाला मैदानी उपजाऊ इलाका है। लेकिन उत्तर की ओर हिमालय की तलहटियों से ऊपर एक अलग पहाड़ी भूगोल है जिसका एक विशिष्ट इतिहास और संस्कृति रही है।

धीरे-धीरे कुछ दशकों में इस भूगोल से एक पृथक राज्य की मांग का आंदोलन उभरना शुरु हुआ। इतिहास में बिखरी हुई यह मांग आजादी के पहले भी उठनी शुरु हो गई थी। कुमाऊं और गढ़वाल के पर्वतीय जिलों को मिलाकर एक अलग प्रशासनिक इकाई बना देने का विचार पहली बार 1929 में कुमाऊं के ब्रिटिश-राज समर्थक कुछ लोगों के एक समूह ने उछाला था। उन्होंने इस आशय का एक ज्ञापन संयुक्त प्रांत के लैफ्टिनेंट गवर्नर मैल्कम हैली को सौंपा था, जिसमें ब्रिटिश कुमाऊं (उत्तराखंड) के लिए स्वायत्ता की मांग की गई थी। मई 1938 में श्रीनगर गढ़वाल में आयोजित कॉंग्रेस के विशेष अधिवेशन में भी इस पहाड़ी भूगोल को एक पृथक राज्य बनाने की मांग उठी थी। 1952 में कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव कॉमरेड पीसी जोशी ने भी इसी आशय का एक पत्र भारत सरकार को लिखा था। हालांकि 1955 में फजल अली आयोग के उस प्रस्ताव को उत्तर प्रदेश सरकार ने ठुकरा दिया था जिसमें विशाल राज्य उत्तरप्रदेश का पुनर्गठन करते हुए उत्तराखंड को एक अलग राज्य बना दिए जाने की शिफारिश की गई थी।

पृथक उत्तराखंड का मूल तर्क था कि उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य में इस पहाड़ी भूगोल और यहां के रहवासियों की उपेक्षा होती आई है और उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। इस लिहाज से वे एक पृथक पहाड़ी राज्य पाने के हकदार हैं जहां उन्हें सही प्रतिनिधित्व मिल पाएगा और वे अपने भूगोल और समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप विकास नीतियां बना सकेंगे।

बिखरे तौर पर यह मांग दशकों तक तैरती रही और इसके भीतर धीमे धीमे गोलबंदी भी होती रही। इस तथ्य को उत्तर प्रदेश सरकार ने शुरुआत में ही भांप लिया था और इस आधार पर पनप रहे असंतोष को शांत करते हुए पर्वतीय इलाकों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए 1967 में पर्वतीय विकास परिषद का गठन किया।

लेकिन बाद के सालों में पृथक राज्य के विचार को और आधार मिला और 90 के दशक के शुरुआती सालों में इस आंदोलन ने

और प्रसार पाया। इसे खासतौर पर तब चिंगारी मिली जब 1994 में तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश सरकार ने मंडल कमिशन की सिफारिशों को लागू करते हुए सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण और राज्य के स्वामित्व वाले शिक्षण संस्थानों में भी ठीक इतने ही प्रतिशत आरक्षण को लागू करने का फैसला लिया। इस निर्णय ने पहाड़ में उबाल ला दिया। इस उबाल का तर्क था कि आरक्षण की यह नीति मैदानी इलाकों के जातीय समीकरणों के लिए अनुकूल थी जहां ओबीसी की एक बड़ी आबादी मौजूद थी। लेकिन वही नीति यांत्रिक रूप से उन पहाड़ी इलाकों में नहीं लागू की जा सकती थी जहां ओबीसी की आबादी दो प्रतिशत से ज्यादा नहीं थी।

इसी क्रम में आंदोलनकारी इस भूगोल के आम जन को नए राज्य का विचार और सपना समझा पाने में काफी हद तक कामयाब रहे इसलिए इस आंदोलन को एतिहासिक तौर पर जन समर्थन हासिल हुआ। एक लंबे संघर्ष और कड़वे अनुभवों के बाद इस आंदोलन के परिणामस्वरूप स्वरूप 9 नवंबर 2000 में देश के 27 वें राज्य उत्तराखंड (उत्तरांचल के नाम से) का निर्माण हुआ।

विकास यात्रा

पृथक उत्तराखंड राज्य को लेकर उबाल में जो समूह था उसकी बुनियादी मांग एक ऐसा अलग राज्य बनाने की थी जो अपने विशिष्ट पहाड़ी भूगोल और अपनी जरूरतों के मुताबिक अपने विकास का पर्यावरण सम्मत एक नया मॉडल चुन सके। बीते दो दशकों में उत्तराखंड विकास के जिस रास्ते पर चला है उस रास्ते में क्या वह विकास की उस मौजूदा व्यापक समझ को ऐड्रेस कर पाया है, जिस पर हमने इस आलेख में ऊपर चर्चा की है?

राज्य निर्माण के बाद राज्य का नेतृत्व जिन राजनीतिक हाथों में आया उन्होंने राज्य की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए इसके संसाधनों को एक्सप्लोर करते हुए विकास के जिस मॉडल की नींव रखी, अब दो दशकों बाद उसके शुरुआती परिणामों को परखा जा सकता है।

शुरुआत से ही यहां विकास के लिए दो संभावनाओं पर सबसे अधिक दाव लगाया। इसके तहत उत्तराखंड को 'ऊर्जा प्रदेश' और 'पर्यटन प्रदेश' बनाने के विजन सामने रखे गए। इस प्रपत्र में हम इन दोनों क्षेत्रों में उत्तराखंड की बीते दो दशकों में रही उपलब्धियों की पड़ताल कर यह समझने की कोशिश करेंगे कि क्या उत्तराखंड इनके जरिए सतत विकास के उस लक्ष्य को पा सका है जिसमें 'भविष्य की पीढ़ियों की जरूरतों को पूरा कर पाने की क्षमताओं को खतरे में डाले बगैर वर्तमान की जरूरतों को पूरा कर पाना' एक शर्त है।

'ऊर्जा प्रदेश'

'ऊर्जा प्रदेश' की प्रेरणा, उत्तराखंड की 16 प्रमुख नदियों और उनकी असंख्य सह-धाराओं से निकली थी जहां 'हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट्स' के निर्माण से विद्युत ऊर्जा के उद्योग को विकसित करने का विजन था। 'ऊर्जा प्रदेश' के अपने विजन को लेकर राज्य सरकार ने काफी सक्रियता दिखाई और राज्य गठन के ठीक एक साल बाद 9 नवंबर 2001 को उत्तराखंड जल विद्युत निगम की स्थापना की जिसका मुख्य मकसद लघु जल विद्युत परियोजनाओं के जरिए, उत्तराखंड के भीतर की जल ऊर्जा की क्षमताओं को समझना और उन्हें एक्सप्लोर करना था।

शुरुआती दावों में राज्य की नदियों की कुल जल विद्युत ऊर्जा क्षमता को 558 बांधों के साथ तकरीबन 25 हजार मेगावॉट आंका गया था। यही 'ऊर्जा प्रदेश' के विचार का आधार था। बीते दो दशकों में राज्य में अलग-अलग नदी घाटियों में तकरीबन 100 से अधिक बांध परियोजनाएं अस्तित्व में आई हैं। इनमें से 37 परियोजनाएं बन कर चालू हो गई हैं और तकरीबन 87 परियोजनाएं योजना या निर्माणाधीन अवस्था में हैं। तकरीबन 24 परियोजनाओं में पर्यावरण संबंधी कारणों के चलते या तो रोक लगी है या वे रद्द कर दी गई हैं।

उत्तराखंड जल विद्युत निगम की वेबसाइट के मुताबिक निगम के तत्वावधान में राज्य में अभी 25 मेगावाट से कम क्षमता वाली 33 जलविद्युत परियोजनाएं मौजूदा समय में काम कर रही हैं, जिनकी कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 1400 मेगावॉट से ज्यादा है। इसके अलावा 14 और ऐसी परियोजनाएं हैं जिनके निर्माण का कार्य अलग अलग स्तरों तक पहुंचा हुआ है। निकट भविष्य में कुल 121.5 मेगावॉट की 13 और परियोजनाओं के लिए निगम ने रोड मैप बनाया हुआ है। इसके अलावा उत्तरकाशी और चमोली जिलों के उच्च हिमालयी क्षेत्रों को भारत सरकार की ओर से सेंस्टिव ईको जोन घाषित करने के बाद इन इलाकों में प्रस्तावित 7 जल विद्युत परियोजनाओं को से निरस्त कर दिया गया है।

एक अनुमान के मुताबिक उत्तराखंड में कुल प्रस्तावित जल विद्युत परियोजनाओं में तकरीबन 1500 किलोमीटर की सुरंगों का निर्माण होना है और राज्य की तकरीबन एक चौथाई आबादी इन सुरंगों के ऊपर होगी। उत्तराखंड को 'ऊर्जा प्रदेश' बनाने की महत्वाकांक्षी कवायद में यहां के संवेदनशील भूगोल में हुए बेतहाशा निर्माणकार्य और सुरंग निर्माण ने एक ओर यहां के संवेदनशील पर्यावरणीय तंत्र को काफी प्रभावित किया है तो दूसरी ओर यहां के समाज ने इन परियोजनाओं के चलते विस्थापन, प्राकृतिक आपदाएंऔर प्रशासन का दमन झेला है। उत्तराखंड में निर्मित या निर्माणाधीन अधिकतर परियोजनाओं पर यहां की पारिस्थितिकी, सामाज, संस्कृति और स्थानीय आर्थिक गतिविधियों पर नकारात्मक असर डालने के आरोप लगते रहे हैं। हाल के सालों में उत्तराखंड में आई भयानक आपदाओं की भयावहता को और अधिक बढ़ा देने के आरोप भी जलविद्युत परियोजनाओं पर लगे हैं। ऐसे आरोप लगाने वालों में ना सिर्फ पर्यावरण एक्टिविस्ट और पर्यावरणविद् शामिल रहे हैं जबकि सुप्रीम कोर्ट की ओर से गठित विशेषज्ञ समितियों ने भी इस तथ्य को सामने रखा है।

राज्य में ऊर्जा की कुल मांग से अधिक उत्पादन करते हुए दूसरे राज्यों को ऊर्जा बेच पाना मूल रूप से 'ऊर्जा प्रदेश' का सपना है। लेकिन बावजूद विनाशकारी परिणामों के उत्तराखंड में चल रही मौजूदा परियोजनाएं सालाना कुल 3971 मेगावाट विद्युत ऊर्जा का उत्पादन कर पा रही हैं जो कि राज्य की खुद की ऊर्जा जरूरतों के लिहाज से भी कम है। राज्य की आर्थिक समीक्षा रिपोर्ट बताती है कि राज्य अब भी अपनी ऊर्जा जरूरतों का 50 प्रतिशत दूसरे राज्यों से आयात करता है।

ऐसे में पिछले 20 सालों में राज्य के 'ऊर्जा प्रदेश' के मॉडल से जो हासिल है उससे उत्तराखंड का सतत विकास सुनिश्चित किया जा पाएगा, इस पर संशय होता है।

'पर्यटन प्रदेश' :

वहीं दूसरी ओर उत्तराखंड में 'पर्यटन प्रदेश' का विजन, पर्वतीय राज्य की अपार खूबसूरती और धार्मिक महत्व के चलते यहां पर्यटन उद्योग का विकास करना था। इसके लिए बीते दौर में प्रदेश भर में धार्मिक पर्यटकों के लिए 'चार धाम यात्रा' और अन्य धार्मिक स्थलों की यात्रा को प्रोत्साहित करने के प्रयास किए गए और नैसर्गिक खूबसूरती से भरपूर जगहों को भी पर्यटक स्थल बनाने की कोशिशें की गईं। लक्ष्य देश और विदेश से भारी से भारी संख्या में पर्यटकों को उत्तराखंड तक लाना था जिससे उत्तराखंड में आर्थिक गतिविधियों में तेजी आए और लोगों को रोजगार हासिल हो। इस कवायद में उत्तराखंड ने काफी उपलब्धियां हासिल की हैं। यहां सालाना 4 करोड़ पर्यटक आते हैं और सरकार का लक्ष्य इनकी संख्या और दोगुनी करने का है। इस कवायद के लिए उत्तराखंड में इंफ्रास्टक्चर के विकास पर भरपूर जोर दिया गया है। जहां एक ओर नैनीताल, मसूरी जैसी मशहूर टूरिस्ट डैस्टिनेशंस में पर्यटकों के लिए सुविधाजनक माहौल बनाने के लिए इंफ्रास्ट्रक्चर पर काफी जोर दिया गया है वहीं पूरे राज्य में सड़कों का जाल बिछाया गया और सड़कों के चौड़ीकरण की कई परियोजनाएं सामने आईं हैं, जिनमें से 889 किमी की 'ऑल वैदर रोड' या 'चारधाम रोड' एक महत्वाकांक्षी योजना भी शामिल है।

उत्तराखंड में चारधाम यात्रा पर्यटन का मुख्य केंद्र है। लेकिन यह चारों धाम ऊंचे हिमालय के संवेदनशील भूगोल में अवस्थित हैं। ऐसे में जिस तरह राज्य चारधाम यात्रा पर बेहद जोर दे रहा है और अधिक से अधिक पर्यटकों को वहां पहुंचाने का लक्ष्य रखा जा रहा है इसने इस इलाके के संवेदनशील हिमालय की पारिस्थितिकी को लेकर कई चिंताएं खड़ी कर दी हैं। सरकार के आंकड़ों के मुताबिक 2022 में चारधाम यात्रा में 40 लाख यात्री शामिल हुए। जबकि अकेले केदारनाथ आने वाले पर्यटकों का यह आंकड़ा 14 लाख को पार कर गया। 2013 की भयानक आपदा झेले केदारनाथ में पर्यटकों की यह तादात इसके संवेदनशील भूगोल के लिहाज से चिंता पैदा करने वाली है।

राज्य में पर्यटन विकास को लेकर चल रही परियोजनाओं ने पर्यटकों को जरूर अपनी ओर खींचा है लेकिन इसने बहुत सी पर्यावरणीय और सामाजिक चिंताओं को भी बढ़ा दिया है, जो कि उत्तराखंड में सतत विकास के लक्ष्य को पाने में चुनौतियां पैदा कर रही हैं। इन निर्माण परियोजनाओं ने उत्तराखंड में भूस्खलन और अन्य आपदाओं को बढ़ाने का काम किया है। उसकी एक महत्वपूर्ण वजह निर्माण कार्यों में वैज्ञानिक सलाहों की उपेक्षा और मनमाना निर्माणकार्य भी है।

2013 की भयानक आपदा के बाद भी ठीक इसी समझ के साथ काम किया गया था। केदारनाथ कस्बे के नवनिर्माण की प्रक्रिया में भी यही रवैया दिखाई दिया था। हर एक एक्पर्ट ऐजेंसी की इस स्पष्ट हिदायत के बावजूद कि केदारनाथ में बाढ़ के बाद आए मलबे को स्थिर होने के लिए कुछ सालों का समय देना चाहिए, और फिर ही किसी किस्म का निर्माण कार्य वहां किया जाना चाहिए। लेकिन इन सुझावों को दरकिनार करते हुए बीते समय में तकरीबन 13 सौ करोड़ रुपया खर्च कर केदारनाथ में बेतहाशा निर्माणकार्य किया गया है।

उत्तराखंड में जिन शहरों में पर्यटन गतिविधियों के चलते आबादी का तेजी से प्रसार हुआ है उन शहरों की अवैज्ञानिक बसावट भी अपने आप में चुनौतीपूर्ण हो गई है। जोशीमठ के भूधंसाव ने जाहिर किया है कि उत्तराखंड के शहरों की बसावट में पूरी तरह अवैज्ञानिकता बरती गई है, और यहां नगर विकास की किसी दूरदर्शी योजना का भरपूर अभाव है। जोशीमठ की तरह ही उत्तराखंड के दूसरे शहर भी इसी समस्या से जूझ रहे हैं।

पर्यटन का जो मॉडल उत्तराखंड में अपनाया गया है उसने संकेंद्रित पर्यटन को बढ़ावा दिया है। पर्यटकों की सबसे बड़ी संख्या महज कुछ मशहूर टूरिस्ट डैस्टिनेशंस की ओर ही ज्यादा है। बाकी राज्य के दूसरे इलाकों में ना पर्यटक पहुंचते हैं जबकि वहां से तो स्थानीय रहवासी भी पलायन को मजबूर हुए हैं।

उत्तराखंड पलायन आयोग की 2018 में आई एक रिपोर्ट बताती है कि बीते एक दशक में पहाड़ के पर्वतीय जिलों से 11.12 प्रतिशत आबादी ने पलायन किया है। इसमें से अधिकतम आबादी को आजीविका की तलाश में पलायन करना पड़ा है। रिपोर्ट के मुताबिक राज्य के तकरीबन साढ़े सात सौ गांव इसी कारण पूरी तरह जनसंख्या शून्य हो गए हैं।

यह भी एक संकेत है कि उत्तराखंड में अपनाए गए विकास मॉडल में इंफ्रास्ट्रक्चर के निर्माण पर तो काफी ध्यान केंद्रित किया गया है लेकिन यह एक सतत विकास का दृष्टिकोण नहीं रखता है। बीते कुछ वर्षों के अनुभवों और कई वैज्ञानिक शोधों ने संकेत दिए हैं कि नव गठित राज्य के लिए जिन योजनाओं को अपनाया गया वह पहाड़ी भूगोल और समाज के हाशिए के तबके के अनुरूप नहीं रही हैं।

उत्तराखंड एक हिमालयी राज्य है, यहीं से भारत की जीवनदयानी नदियों का जन्म होता है जो उपजाऊ मैदान तैयार करती है, जलवायु का निर्धारण करती हैं। यह क्षेत्र बहुत संवेदनशील है क्यूंकि सागरीय अवसाद से निर्मित विभिन्न चरणों में उपस्थित भारतीय हिमालय में अनेक छोटी बड़ी सक्रीय भ्रंश एवं दरारें हैं, जो विध्वंसात्मक टेक्टोनिक घटनाओं को बढती हैं। हिमालय का जन्म 5-6 करोड़ वर्ष पूर्व ही हुआ था इसलिए यह पृथ्वी के बाकि हिस्सों से ज्यादा सक्रीय है और अभी भी ऊंचा उठ रहा है। हिमालय क्षेत्र होने के कारण उत्तराखंड का प्राकृतिक घटनाएं जैसे बाढ़, भूस्खलन, भूमि अपरदन, वनाग्नि, बादल फटना, भूकम्प आदि से पुराना संबंध है लेकिन धीरे-धीरे समय और विकास के साथ साथ ये घटनाएं अब मानवजनित आपदाओं का रूप ले रही है।

हिमालय के एक अतिसंवेदनशील भूगोल वाले राज्य की अपनी संवेदनशील बनावट और वैश्विक स्तर पर क्लाइमेट चेंज के खतरों के चलते हाल के वर्षों में राज्य ने कई पर्यावरणीय और सामजिक चुनौतियां का सामना किया है। विशेषज्ञों की आशंका के मुताबिक निकट भविष्य में उत्तराखंड राज्य को इस तरह की और चुनौतियों से जूझना होगा। अगर समय रहते इन चुनौतियों से जूझने के लिए पर्यावरण और समाज सम्मत

नीतियों की ओर रुख किया जाए तो भविष्य में संभावित विकराल चुनौतियों को टाला जा सकता है। उत्तराखंड के सामने अब भी एक विकास का एक ऐसा मॉडल चुनने का विकल्प है जिसके तहत वह आने वाली पीढ़ियों के लिए चुनौतियां खड़ी किए बगैर मौजूदा समय की अपनी जरूरतों को पूरा करने के रास्ते तलाश सके। ■

संदर्भ

1. जोशी रोहित, दरारों से झांकता विकास मॉडल, *समयांतर*, फरवरी, 23, अंक 2

2. https://www.nrsc.gov.in/sites/default/files/pdf/DMSP/Joshimath_landslide_vvJanw®wx.pdf (यह रिपोर्ट सरकार के निर्देशों पर वेबसाइट से हटा ली गई थी।)

3. खरे विनीत, 'उत्तराखंड के जोशीमठ में क्यों धंस रही है जमीन?' BBC https://www.bbc.com/hindi/india

4. मिश्रा कमेटी रिपोर्ट, 1976.

5. Ingham Barbara, The Meaning of Development: Interactions Between 'New' and 'Old' Ideas.http://bit.ly/xSpwCDk

6. Ingham Barbara, उपरोक्त

7. 'अवर कॉमन फ्यूचर'/ ब्रूंटलैंड रिपोर्ट, 1987.https://www.are.admin.ch/are/en/home/media/publications/sustainable-development/brundtland-report.html

8. Capability Approach.https://en.wikipedia.org/wiki/Capability_approach

10. Singh Jeet, The role of hydropower projects in development and disasters in Uttarakhand. https://india.mongabay.com/2021/08/commentary-the-role-of-hydropower-projects-in-development-and-disasters-in-uttarakhand/

13. https://sandrp.in/2014/04/29/report-of-e&pert-committee-on-uttarakhand-flood-disaster-role-of-heps-welcome-recommendations/

14. *आर्थिक समीक्षा रिपोर्ट*, 2020-21

मीडिया

जाति के बहाने

योगेंद्र यादव बनाम *आजतक*

जितेंद्र कुमार

योगेंद्र यादव आजतक के उस दौर की बात करते हैं जब वह पूरी तरह चैनल नहीं बना था बल्कि दूरदर्शन के लिए बीस मिनट का 'आजतक' नाम से एक कार्यक्रम बनाया करता था। दुखद यह भी रहा कि 'आजतक' के पूरी तरह खबरिया चैनल बनने से पहले सुरेंद्र प्रताप सिंह (एसपी) की मौत हो गयी थी।

कर्नाटक चुनाव में कांग्रेस की जीत पर *आजतक* चैनल पर हुई बहस प्रकरण, जो योगेंद्र यादव बनाम चित्रा त्रिपाठी के रूप में चर्चित हुई या कह लीजिए कि जिसे बहुत से संकीर्ण व जातिवादी लोगों ने 'ब्राह्मण बनाम यादव' का भी नाम दिया, उसी बहस को केंद्र में रखकर योगेंद्र यादव ने शेखर गुप्ता के द *प्रिंट* वेबसाइट पर 26 मई को एक लेख लिखा है। वह लेख हिंदी और अंग्रेजी में एक साथ प्रकाशित हुआ है।

इस लेख में योगेंद्र यादव कई बातों का सतहीकरण करते हैं और कई बातों पर लीपापोती भी करते हुए दिखाई देते हैं। एक उदाहरण *आजतक* का है। योगेंद्र यादव *आजतक* के उस दौर की बात करते हैं जब वह पूरी तरह चैनल नहीं बना था बल्कि दूरदर्शन के लिए बीस मिनट का 'आजतक' नाम से एक कार्यक्रम बनाया करता था। दुखद यह भी रहा कि 'आजतक' के पूरी तरह खबरिया चैनल बनने से पहले सुरेंद्र प्रताप सिंह (एसपी) की मौत हो गयी थी। वैसे योगेंद्र यादव उस बीस मिनट वाले 'आजतक' के शुरुआती दिनों को याद करते हुए लिखते हैं, ''मैं इस बात का साक्षी हूं कि उन्होंने 'आजतक' के शुरुआती दिनों में कैसे न्यूजरूम में सामाजिक विविधता का ताना-बाना बनाया था।''

मैं योगेंद्र यादव के इस दावे को पूरी तरह खारिज करते हुए प्रमाण के साथ बता सकता हूं कि वहां कोई जातीय विविधता नहीं थी। डॉ. आंबेडकर के शब्दों को उधार लेकर कुछ अलग तरह से उस बात को कहना चाहूं तो कहा जा सकता है कि वह पूरी तरह भले ही 'ब्राह्मण ब्यॉज' नहीं थे लेकिन 'जस्ट लाइक ब्राह्मण ब्यॉज' ही तो थे। हां, यह भी सौ फीसदी से अधिक सही है कि एस पी सिंह तब के (और मौजूदा दौर पर तो जितनी कम बात हो, इज्जत उतनी कम उतरेगी) सभी संपादकों से लाख गुना बेहतर थे। उनमें पेशेवर ईमानदारी व प्रतिबद्धता थी, वह सांप्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे और हर तरह के जातीय या धार्मिक उन्माद बढ़ाने के खिलाफ थे।

इसी लेख में योगेंद्र यादव लिखते हैं, ''इस सब के बीच एक सवाल मेरे दिमाग को मथ रहा था: हिंदी पत्रकारिता, खासकर हिंदी समाचारों की टेलीविजन पत्रकारिता, ऐसे गर्त में क्योंकर जा समाई है? एसपी होते तो ये सवाल मैं उन्हीं से करता क्योंकि उनकी टोली के ज्यादातर प्रशिक्षु पत्रकार चैनल हेड के पद तक पहुंचे हैं, लेकिन अफसोस! कि एसपी जल्दी चले गए, उस घड़ी जब 'आजतक' पूरे चैनल का रूप नहीं ले पाया था।''

फिर पता नहीं क्यों योगेंद्र यादव अपने सवाल का जबाव पाने के लिए मृणाल पांडे की किताब द *जर्नी ऑफ हिंदी लैंग्वेज जर्नलिज्म इन इंडिया: फ्रॉम राज टू स्वराज एंड बियॉन्ड* को खोलकर बैठ जाते हैं और उस किताब व मृणाल पांडे की तारीफ में कसीदे काढ़ते और वाहवाही करते हुए लिखते हैं, 'किताब हिंदी न्यूजरूम का